ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-6* July- 2021
Innovation The Research Concept

जागीर और विर्तिया जमीन्दार-गोरखपुर के विशेष सन्दर्भ में

In the special context of Jagir and Virtiya Zamindar-Gorakhpur

Paper Submission: 03/07/2021, Date of Acceptance: 14/07/2021, Date of Publication: 23/07/2021

सुधाकर लाल श्रीवास्तव
इतिहास विभाग
एसोसिएट प्रोफेसर
दी0द0उ0गो0वि0वि0,
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

हिन्दुस्तान में 'जागीर' शब्द का चलन 15वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। 'जागीर' एक फारसी शब्द है, बहार-ए-आजम' में जागीर शब्द की तकनीकी व्याख्या इस प्रकार दी गयी है- "जागीर, जै, गीर। वह भूक्षेत्र जो बादशाह मसंबदारो या उस तरह के व्यक्तियों को प्रदान करता था, वह उस क्षेत्र के किसानों से महसूल (राजस्व) प्राप्त करते थे।1 जागीर प्राप्तकर्ता को जागीर दार कहा जाता था और जागीरों के लिए सुरक्षित किन्तु अप्रदत्त भूभागों को 'पैबाकी' कहा जाता था।2 तुयूल शब्द का चलन फारस में 14वीं शताब्दी में हुआ। जागीर अमीरों और मसंबदारों को दी जाती थी, जब कि तुयूल शहजादों और शाही परिवार के लोगों को दिया जाता था। मुगल साम्राज्य में अधिकांश भूभाग जागीर के रूप में नियत था। लगभग 80 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा जागीरदारों को दिया गया था। इसीलिए इतनी बड़ी मात्रा में साम्राज्य के राजस्व को प्राप्त करने वालो जागीरदारों का वर्ग महत्वपूर्ण था।

The use of the word 'Jagir' in India started in the 15th century. 'Jagir' is a Persian word, in 'Bahar-e-Azam' the technical explanation of the word Jagir has been given as follows - "Jagir, Jai, Gir. The land which the emperor granted to the masambadars or such persons, he received mahsul (revenue) from the farmers of that area. It was called.2 The word Tuyul originated in Persia in the 14th century. Jagir was given to the nobles and masabdars, while tuyul was given to princes and members of the royal family. Most of the land in the Mughal Empire was fixed as jagirs. More than 80 percent of the share was given to the Jagirdars. That is why the class of jagirdars who received such a large amount of revenue from the empire was important.

मुख्य शब्दः जागीरदार, विर्ता जागीरदार, नानकार-चकलादार, गोरखपुर, बस्ती, तमकुही, ताल्लुकेदार, इजाराप्रथा, वतन जागीर।
Jagirdar, Virta Jagirdar, Nankar-Chakladar, Gorakhpur, Basti, Tamkuhi, Talukdar, Ijarapratha, Watan Jagir.

प्रस्तावना

सामान्यतः मसंबदार ही जागीरदार होते थे। विशिष्ट पद-स्तर के अनुसार मसबंदार के वेतन का हिसाब 'दाम' में लगाया जाता था3 मनसबदारों के वेतन का भुगतान शाही खजाने से नकदी या फिर सामान्य प्रचलित तरीके के अनुसार उसे अनुमानित आय वाले भू-भाग को जागीर दे दी जाती थी जागीर के रूप में प्रदत्त भूभाग में एक पूरा परगना या एक महाल का कोई अंश या अधिक भूभाग शमिल हो सकता था। तकनीकी तौर पर इस अनुमानित आय को 'जमा' या जमादामी कहा जाता था। नगद वेतन के स्थान पर दी जाने वाली जागीर को 'जागीर-ए-तनख्वाह या तनख्वाह-ए-जागीर कहा जाता था। जब किसी व्यक्ति को किसी पद पर नियुक्ति के समय सशर्त जागीर दी जाती थी तो उसे "मशरूत" या "प्रतिबन्धित" जागीर कहा जाता था4 कुछ जागीरें स्वतंत्र होती थी, अर्थात् वे किसी प्रकार की सेवा के प्रतिरूप में नही दी जाती थी ऐसे जागीरों को 'इनाम' कहा जाता था।5 जमादारी और हासिल (आय) के बीच के अन्तर को स्वीकारते हुए प्रत्येक महाल की जमा व हासिल के मध्य वार्षिक अनुपात का निर्धारण करने के बाद उसे मासिक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। जिस जागीर का हासिल आय जमा के बराबर था, उस जागीरदार को बारहमासी तथा जहा हासिल आय आधा था, उसे छः माही (शश माहा) नाम से जाना गया। बादशाह ही यह निश्चित करता था कि उसे नगद वेतन या जागीर के रूप में वेतन दिया जाय, चूंकि मनसबदार को नगद वेतन के स्थान पर जागीर दिया जाता था अतः जागीर से होने वाली आय से कम उसे स्वीकृत वेतन के बराबर होनी आवश्यक थी, यह तभी सम्भव था जब राज्य के पास जागीर के रूप में प्रदान किये जाने वाले भूभाग की आय के आकड़े उपलब्ध हो। अतः शाही क्षेत्र की प्रत्येक इकाई-गांव परगना या महाल की सम्भावित आप से आकड़े तैयार किये गये।

जागीरदार का अधिकार उसे प्राप्त जागीर के राजस्व तक ही पूरी तरह सीमित था किन्तु किसी क्षेत्र विशेष में पर्याप्त समय तक भूराजस्व के निर्धारण एवं संग्रह करने का अधिकारी बने रहने का लाभ उठाकर जागीरदार उस क्षेत्र की भूमि पर किसी प्रकार के अधिकार अथवा स्वामित्व का दावा प्रस्तुत कर सकता था, या स्थानीय जनता से सम्बन्ध स्थापित करके स्थानीय शक्ति के रूप में उभर सकता था और साम्राज्य की एकता के लिए खतरा पैदा कर सकता था। इसी खतरे को दूर करने के लिए जागीरदारो पर शाही नियत्रंण को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से जागीरों के निरन्तर हस्तान्तरण का

सिद्धान्त लागू किया गया। इस प्रथा के कारण जागीरदार बादशाह की इच्छा पर ही निर्भर थे, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक क्षेत्र में केन्द्रित जागीरदारों को अन्य क्षेत्रों में भेज दिया जाता था, जागीर हस्तान्तरण की प्रथा के कारण कभी-कभी मनसबदारों में वैमनस्य भी पैदा हो जाता था, ऐसी स्थिति तब होती थी जब एक जागीरदार को हस्तान्तरण सम्बन्धी आदेश मिल जाता था किन्तु दूसरे को नही, जब एक जागीरदार के एजेण्ट, इस राजस्व को भी वसूल लेते थे, जिसका हकदार, दूसरा जागीरदार होता था, इस परिस्थितियों में उनमें परस्पर संघर्ष भी हो जाता था किन्तु शक्तिशाली केन्द्र की मौजूदगी में ऐसा करना कठिन था। वतन जागारों की उत्पत्ति जमीदारों अथवा क्षेत्रीय सरदारों की मुगल सेवा में प्रविष्टि के साथ हुयी, मुगल साम्राज्य के विस्तार में स्थानीय शासकों का सहयोग प्राप्त करने एवं उन्हें मुगल प्रशासन तंत्र का अंग बनाने के उद्देश्य में मुगलों ने विशेषकर अकबर ने एक निश्चित नीति अपनायी इस नीति के अर्न्तगत राजपूत राजाओं द्वारा मुगल बादशाह की प्रभुसŸाा स्वीकार करने के साथ ही उनकी शाही सेवा में नियुक्ति की जाती थी और उनकी प्रतिष्ठा एवं प्रभाव के अनुसार उन्हें शाही मनसब प्रदान किया जाता था, उन्हें प्रदŸाा मनसब के अनुसार उनका वेतन मांग (तलब) निर्धारित किया जाता था, उनके पुस्तैनी राज्य चूंकि अर्धस्वतंत्र होते थे, अतएव वहाँ की जमा का परिकलन मनमाने ढंग से होता था।6 उनके वेतन की अदायगी सामान्यतः जागीर राजस्व के रूप में की जाती थी और जागीर के रूप में उन्हें पैतृक क्षेत्र प्रदान किये जाते थे, उनके पुराने पैतृक राज्य समकालीन शब्दावली में 'वतन' कहे जाते थे अतः इनके जागीरों को वतन जागीर कहा जाता था वतन जागीर कभी-कभी इनाम अथवा बिना किसी उत्तरदायित्व के वेतन के रूप में भी प्रदान की जाती थी, संभवतः राजपूत राजाओं को मुगल सेवा में सम्मिलित होने के लिए आकर्षित करने के उद्देश्य से ऐसा किया जाता था, वे अपने जागीरो में भूराजस्व का निर्धारण परम्परागत तरीके से स्वतंत्र रूप से करते थे। राजस्व निर्धारण के अतिरिक्त राजपूत शासक अपने वतन जागीर में स्वयं प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति भी करते थे। सामान्यतः बादशाह वतन जागीरों के प्रशासन में हस्तक्षेप नही करते थे।

अध्ययन का उद्देश्य

मुगल साम्राज्य में अधिकांश भू-भाग के रूप में लगभग 80 प्रतिशत भाग जमीन्दारों को दिया गया था। परन्तु जागीरदार का अधिकार उसे प्राप्त जागीर तक ही सीमित था। जागीरदार बादशाह के इच्छा पर निर्भर थे मुगलों ने राजपूतों को उनकी प्रतिष्ठा और उनके प्रभाव के अनुसार शाही मनसब प्रदान किया उनके वेतन की अदायगी सामान्यतः जागीर के रूप में की जाती थी और जमीन्दारों को विभिन्न शर्तो पर भूमि का स्वामित्व प्राप्त होता था। इन जागीरदारों , जमीन्दारों या विर्ता जमीन्दारों का बादशाह अथवा बाद में वायसराय से संघर्ष होता रहता था। गोरखपुर में जमीन्दारों की अधिक संख्या होने के कारण मैंने इन जागीरदारों की वास्तविक स्थिति को प्रकट करने के उद्देश्य से इस शोध पत्र का लेखन किया। जिससे जन सामान्य भी मूल्यांकन कर सके।

जमीदार शब्द फारसी भाषा का एक संयुक्त पद है जिसका अर्थ भू नियंत्रक होता है। 18 वी शताब्दी में जमीन्दार शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा गया कि 'जमीन्दार शब्द का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया जाता था, जिन्हे विविध शर्तो पर भूमि का स्वामित्व प्राप्त होता है, जमीन्दार एक वर्ग के रूप में आसामी या रैय्यत कहे जाने वाले खेतिहर किसानों से भिन्न तथा श्रेष्ठ स्तर के होते थे।7 18वीं शताब्दी में ही आनन्द राम मुखलिस नामक दरबारी ने लिखा है कि जमीन्दार शब्द मूलतः उस व्यक्ति का परिचायक है जिसके पास भूमि तो होती थी, परन्तु उसका आसय उस व्यक्ति से है जो किसी गांव या नगर का स्वामी है और कृषि करता हो8 प्रो0 नूरूल हसन ने जमीन्दारी अधिकारों के आधार पर जमीन्दारों को निम्न तीन मुख्य श्रेणियों में बांटा है, पहला स्वायŸाा जमीन्दार, दूसरा मध्यस्थ जमीन्दार, तीसरा प्राथमिक जमीन्दार, यद्यपि ये श्रेणिया किसी प्रकार अनन्य नही थी9 1810 में कवायफ-ए-जिला गोरखपुर के लेखक मुफ्ती गुलाम हजरत ने गोरखपुर जनपद के जमीन्दारों को भी तीन श्रेणियों में बांटा है पहला स्वतंत्र या संयुक्त जमीन्दार दूसरा ताल्लुकेदार अथवा राजा, तीसरा विर्तिया जमीन्दार। जमीन्दारों को मालिकाना अथवा 'नानकार' मिलता था, यह मलिकाना जमीन्दार का एक अधिकार माना जाता था, जमीन्दार को किसानों से सीधे राजस्व वसूल किये जाने के नाते प्रति सैकड़ा बीघा की दर से कुछ भूमि या प्रति सैकड़ा मन की दर से कुछ अनाज दिया जाता था, मालिकाना की दर सामान्यतः 10 प्रतिशत होती थी।

18वीं शदी में गोरखपुर जनपद में जमीन्दारों को 'इजारा प्रथा' के कारण शायद ही 'नानकाना' मिला हो, क्योंकि नानकार अथवा 'मालिकाना' चकलादार अथवा आमिल की शक्ति एवं नियंत्रण के अनुसार घटती बढ़ती रहती थी, जब आमिल का नियंत्रण कमजोर होता था, तो जमीन्दार 90 हजार से 1 लाख रूपये तक नानकार प्राप्त कर लेते थे, जो राजस्व का 20 प्रतिशत हो जाता था। यद्यपि लेल्टिनेन्ट पी0 डब्लू ग्रान्ट ने गोरखपुर जनपद के जमीन्दार को दिये जाने वाले नानकार को औसत 5 प्रतिशत माना है। किन्तु प्रो0 एस0एन0आर0 रिजवी का मत है कि गोरखपुर मंे नानकार की दर पूर्णतः जमीन्दारों की शक्ति एवं स्थिति पर निर्भर थी10 राजस्व सम्बन्धी प्रमुख अधिकार के अतिरिक्त जमीन्दार किसानों से अन्य लाभ भी प्राप्त करता था। जैसे गोरखपुर के सत्तासी राजा पहलवान सिंह अपनी जमीन्दारी के राजगी के रूप में जलकर, बनकर,कूत सै, जमीन्दारी, कूतसैर, मड़वानी, शादी, रसूमखाना बागों की विक्रय का चौथायी हिस्सा दरमाह दलाल कोरा तथा दरमाह फलवारान कोहकूकए जमीन्दारी के रूप में वसूल किये जाने का विवरण दिया।11 इन करो के अलावा सतासी राजा अपनी जमीन्दारी में बढ़ई कुम्हार आदि श्रमिक वर्ग से मासिक उपकर वसूल करता था और बेगार लेने का भी अधिकार था।12 जमीन्दार के अधिकार बशानुंगत थे और ये उन्हे विभाजित हस्तान्तरित बधंक अथवा गिरवी रख सकता था। जमीन्दारों को कुछ महत्वपूर्ण कार्य जैसे कृषि की उन्नति, आबादी को बढ़ाने और अपनी जमीन्दारों के राजस्व को नियमित रूप से भुगतान करने का दायित्व शासन की ओर से सौपा जाता था, जमीन्दार शस्त्र बल भी रखता था। 18वीं शदी में वायसराय व गवर्नर सामान्य रूप से हिन्दू राजाओं और जमीन्दारों से सतत संघर्ष की स्थिति में थे, उनमें से कुछ की भूमि को वे छीनना चाहते थे और कुछ को परम्परागत राजस्व से अधिक देने के लिए विवश करना चाहते थे।13

गोरखपुर में जमीन्दार केन्द्रीय सŸाा के प्रतिनिधि अवध के नवाबों से निरन्तर संघर्ष की स्थिति में थे। गोरखपुर में सबसे पुरानी जमीन्दारी मझौली थी। यहाँ के राजा सर्वाधिक प्रसिद्ध और सैनिक सम्मान प्राप्त जमीन्दार थे।14 मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में मझौली राजा स्वायŸाा सरदारो की श्रेणी मंे आता था।15 सम्राट जहांगीर ने मझौली राजा नत्थूमल को पांच हजार रूपये का नगद पुरस्कार

और मनसब प्रदम किया था।16 परन्तु अवध के नवाबो ने मझौली के राजा पर भी पर्याप्त नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। नवाब द्वारा नियुक्त चकलादारों अथवा आमिलो के भय से मझौली के राजा को भागकर विहार के सारन जिले में स्थित सोहगौरा नामक स्थान पर रहना पड़ा।

मझौली के राजा वीसेनो की उत्पत्ति मयूरध्वज अथवा मयूर भट्ट नामक तपस्वी की राजपूत स्त्री से उत्पन्न विश्वशेन नामक पुत्र से मानी जाती है मझौली राजा की स्थापना भी विश्वसेन ने किया था। प्रारम्भ में मझौली जमीन्दार राजा भवानी मल्ल था, भवनी मल्ल के बाद बाबू लक्ष्मीमल्ल के बाद शिवमल्ल और कृष्ण प्रताप मल्ल के अल्पवयस्क होने से भवानी मल्ल के तीसरे बेटे आनन्द मल्ल उसके बाद शिव मल्ल तथा अजीत मल्ल राजा बने जो आजीवन 1805 तक मझौली के जमीन्दार बने रहे।17 उन्हें मात्र 345 रूपया वार्षिक मिलता था, जब की सिमित जमीन्दारी के बाद भी उस समय कुल राजस्व 21513 रूपये था।18

सतासी में भगवन्त सिंह के नेतृत्व में श्रीनेत क्षत्रियों ने लगभग 12वीं शताब्दी में डोम कटार जाति के लोगों को धोखे से मार कर उनवल, रतनपुर, मगहर तथा हवेली गोरखपुर के भूभागों पर अधिकार कर लिया। भगवन्त सिंह के पुत्रों रणधीर सिंह, जय सिंह, जगधीर सिंह और दिलीप सिंह के बीच जमीन्दारी का विभाजन हुआ, जिसमें रणधीर सिंह को हवेली गोरखपुर का लगभग 87 कोस का भू भाग मिला, जिसके कारण उसके उत्तराधिकारियों को गोरखपुरी राजा अथवा सतासी राजा कहा गया। सतासी राज्य की सीमाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। राजा गज सिंह के उत्तराधिकारी राजा रूप नारायण सिंह के समय में जमीन्दारी का विकास हुआ परन्तु 1729 में अवध के नवाब सआदत खाँ, बुरहानुल्मुल्क के दीवान आत्माराम ने सत्तासी राजा का अलग ताल्लुका बना दिया, जो ताल्लुका गजपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसमें 664 मौजे थे, उसमें केवल 181 मौजांे का राजस्व सरकार को देना था। उनवल के जमीन्दार भी श्रीनेत क्षत्रिय थे, प्रचलित परम्परा के अनुसार इसके संस्थापक जगधीर सिंह थे, जिन्हें पारिवारिक विभाजन में 21कोस की जमीन्दारी मिली थी, उनवल के जमीन्दार परिवार के लड़कों को बांसी और सत्तासी के निःसन्तान राजाओं ने कई बार अपना दत्तक पुत्र बनाया। 18वीं शदी में जय सिंह, दिलीप, दिग्विजय सिंह, दुष्टदमन सिंह और हरिहर, सरफराज सिंह क्रमशः उनवल के राजा या जमीन्दार रहे।

गोरखपुर के धुरियापार जमीन्दार कौशिक क्षत्रिय थे। 14वीं शदी में धुरवचन्द नामक व्यक्ति ने इस जमीन्दारी की स्थापना की थी उसने यहाँ के भरो को भगाकर अपने नाम पर धुरियापार को आबाद किया था। उसकी जमीन्दारी में 40 तप्पे थे आगे चलवा राजा राघव चन्द्र के दो पुत्रों पृथ्वी चन्द्र व टोडर चन्द्र के बीच जमीन्दारी के लिए संघर्ष छिड़ गया जो उनके उत्तराधिकारों के समय सौ वर्षो तक चलता रहा। अवध के नवाब ने इसमें हस्तक्षेप कर 1388 मौजों को पृथ्वीचन्द और टोडर चन्द के वशंजो को दे दिया। पृथ्वी चन्द के वशंज गोपालपुर और टोडर चन्द्र के वंशज बढ़यापार में राजा की उपाधि धारण करते अपनी जमीन्दारी संभाले।

नरहरपुर के जमीन्दार भी वीसेन राजपूत थे। इसकी स्थापना बाबू बरतात सिंह ने की थी, जो सेमरा के जमीन्दार थे, वे मझौली राजा की परिवार की एक शाखा से सम्बन्धित थे। उन्होंने चिल्लूपार सहित धुरियापार के तीन तप्पों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। 1833 में यहाँ के जमीन्दार राजा हरप्रसाद मल्ल थे, जिसकी वार्षिक आय लगभग छः हजार रूपया थी। बांसी राज्य की स्थापना श्रीनेत राजा भगवन्त सिंह के पुत्रों जय सिंह व दिलीप सिंह के बीच हुए विभाजन के फलस्वरूप हुयी, किन्तु गोरखपुर के चकलादार काजी खलीलुर्रहमान ने बांसी के राजा राम सिंह की जमीन्दारी को अत्यधिक सिमित कर दिया। 1722 में राजा माधव सिंह की मृत्यु के बाद तेज सिंह द्वितीय बांसी के राजा बने। राजा तेज सिंह द्वितीय की मृत्यु के बाद दोनों भाइयों के निर्णायक युद्ध में 1166 में दोनों भाइयों की मृत्यु की मृत्यु हो गयी। अतः अल्पवयस्क पुत्रों बहादुर सिंह और सर्वजीत सिंह को संयुक्त रूप से बासी का जमीन्दार बनाया गया। 19वीं शदी के प्रारम्भ तक राजा सर्वजीत सिंह बासी के राजा थे, इनके समय में बखिरा ताल्लुखा जमीन्दारी से अलग हो गया। पडरौना के जमीन्दार भूपाल राय के वंशज थे, जो लगभग 1556 में इलाहाबाद के कड़ा माणिकपुर नामक स्थान से आकर मझौली के राजा की सेवा में शामिल हो गये थे। भूपाल राय सैंथवार जाति के थे। मझौली के राजा भीम मल्ल ने उन्हें परगना सिधुवा-जोबना के तप्पा बांसी चिरगौरा में पांच मौजो की जमीन्दारी प्रदान की थी जिसे उसके उत्तराधिकारियों ने आगे बढ़ाया। 1681 में मुगल सम्राट औरंगजेब ने यहाँ के जमीन्दार नाथराव को सरवराहकर अथवा राजस्व प्रशासक नियुक्त किया। नाथराय के बाद पुलास राय, भूपनारायन राव गहनू राव और राम नारायण राय यहा के जमीन्दार बने। 1805 में कंपनी सरकार राम नारायण राय और बहादुर राय को संयुक्त रूप में 7,491 रूपया तीन आना नानकार के रूप मंे प्रदान की थी। किशोर राय और उसके वशंजो ने स्वतंत्र रूप से लक्ष्मीपुर की जमीदारी का अत्यधिक विस्तार किया।

इसी प्रकार 18वीं शदी में मसंूर नगर बस्ती के जमींदार कलहसं राजपूत थे, बान सिंह, जय सिंह, पृथ्वीपाल सिंह और युवराज सिंह यहां के राजा थे। अमोढ़ा के राजा जालिम सिंह ने राजा पृथ्वीपाल सिंह को पांच वर्षो तक बलपूर्वक जमीन्दारी से वंचित रखा था। इसके अतिरिक्त पृथ्वीपाल सिंह को अवध के नवाब के कैद में भी रहना पड़ा था। वर्तमान बस्ती जिले के अन्तर्गत नगर की जमीन्दारी की स्थापना जगदेव सिंह नामक गौतम क्षत्रिय ने की थी। उसने भरों को भगाकर इस जमीन्दारी की स्थापना की थी। इस वंश के राजा गजपत राव ने गणेशपुर को अपना निवास स्थान बनाया था, उसके आठ पुत्रों में जमीन्दारी का विभाजन हुआ। 1801 में राजा राम प्रकाश सिंह की जमीन्दारी में 114 मौजे सम्मिलित थे। कान्हणदेव सूर्यवंशी क्षत्रिय ने राय जगत सिंह कायस्थ के साथ मिलकर आमोड़ा जमीन्दारी की स्थापना की थी कान्हड़ देव के पुत्र कस नारायण ने परगने के आधे भाग पर अधिकार कर लिया और उसके उत्तराधिकारियों ने कायस्थों की जमीन्दारी को निस्तर सिमित करने का कार्य किया। जिसके फलस्वरूप कायस्थो की जमीन्दारी कुछ मौजो तक सिमित हो गयी और पूरे परगने पर सूर्यवशी क्षत्रियों का अधिकार हो गया। 18वीं शदी में राजा जालिम सिंह यहां सर्वाधिक महत्वपूर्ण जमीन्दार था उसे अवध के नवाब शुजाउदौला ने नानकार के रूप में 18000 रूपया वार्षिक नगद प्रदान किया था। महुली में अलखदेव और तिलकदेव नामक दो सूर्यवंशी क्षत्रिय भाइयों ने यहां जमीन्दारी स्थापित की थी इस परिवार के लिए 'पाल' की उपाधि धारण कर लिए थे। अलख देव के वंशज राजा मानपाल के तीन पुत्रों ने अपनी अलग-अलग जमीन्दारिया स्थापित कर ली, इसमें पारस, रामपाल महुली तथा जगतबली पाल जसवल के तथा संसार पाल सिकदार के जमीन्दार बने। 18वीं शदी में मर्दन पाल, पृथ्वी पाल, मणिपाल और सरफराज पाल क्रमशः महुली के जमीन्दार बने।

18वीं शताब्दी में के उत्तरार्द्ध में राजा फतेहशाही ने तमकुही में जमीन्दारी स्थापित की थी, जो भूमिहार ब्राह्मण थे। वह मुगल सम्राट अकबर के समकालीन राजा कल्याण मल्ल के वंशज थे। 1765 में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने विहार की दीवानी प्राप्त कर ली तो राजा फतेहशाह जो सूबा विहार के सारन जिले में हुसेपुर के निवासी थे, उन्होंने कंपनी को राजस्व देना बन्द कर दिया था, उनके विरूद्ध अंग्रेजी सेना भेजी गयी। वे भागकर गोरखपुर के अर्न्तगत परगना सिधुवा-जोबना के तप्पा बाक जामिनी में तमकुही नामक स्थान पर शरण लिये। राजा फतेह शाही के वशंजो ने तमकुही की जमीन्दारी को विस्तृत कर 100 मौजो में स्थापित कर दी अपने जीवनकाल में ही फतेहशाही ने अपने चार पुत्रों अलीमर्दन शाही को उत्तराधिकारी बनाकर शेष दलमर्दन शाही, शमशेर शाही, और रणबहादुर शाही को कुछ मौजांे की जमीन्दारी देकर सन्यास व्यतीत करने लगे। गोरखपुर के जमीन्दारों के स्वायत्त अथवा अर्धस्वतंत्र एवं मध्यस्थ जमीन्दारों भी श्रेणी में रखा जा सकता है। इन जमीन्दारों ने स्वतंत्र आचरण अपनाने का प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप समय-समय पर अवध के नवाब में चकलादारों 19 के साथ संघर्ष होते रहे। जिसका प्रभाव जनपद के आर्थिक विकास पर पड़ा।

गोरखपुर जनपद की समस्त कृषि योग्य भूमि किसी न किसी रूप में प्राथमिक जमीन्दारो के स्वामित्व में थी। मुफ्ती गुलाम हसरत ने गोरखपुर के जमीन्दारों को स्वतंत्र अथवा संयुक्त जमींदार की संज्ञा दी है, जिसमें एक श्रेणी विर्तिया जमीन्दार के रूप में थी, जो सेवाओं के बदले विर्त प्राप्त किया करते थे। विर्त शब्द संस्कृत के वृत्ति शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य जीविका से है कुछ व्यक्तियों को समृद्धशाली जीवन यापन हेतु विर्त प्रदान किया जाता था। प्रायः राजा और ताल्लुकेदार अपने निकट सम्बन्धियों को इसी उद्देश्य से विर्त प्रदान करते थे, कुछ व्यक्तियों को सीमाओं की रक्षा करने के लिए विर्त प्रदान किया जाता था जिसे मोर्चाबन्दी विर्त कहते थे, जैसे बस्ती के राजाओं ने बुटवल और कटिहला के राजाओं के विस्तार को रोकने के लिए तप्पा गिरवन श्रीनेत राजपूतों को और तप्पा कुनियावा कथवटिया राजपूतो को प्रदान किया था। मृतक पुत्रों को जीवन यापन के लिए दिये जाने वाले विर्त को 'मरवट विर्त' या 'खुनबहा विर्त' कहा जाता था कभी-कभी कुछ धन लेकर भी राजा अथवा ताल्लुकेदार किसी व्यक्ति को विर्त प्रदान करते थे जिसे भई विर्त कहते थे।20 ब्राह्मणों, साधु सन्तांे और फकीरों को भी राजस्व मुक्त अनुदान दिया जाता था, जिसे संकल्प विर्त कहते थे। इसमें से कुछ राजस्व मुक्त थे, कुछ व्यक्तियों को दोनों प्रकार के विर्त एक साथ दिये जाते थे, जैसे सतासी के राजा सर्वदमन सिंह ने 1730 में बाबू रणजीत सिंह को 1 तप्पा 2 मौजा 9 कोरू भूमि विर्त के रूप में दी थी। जिसमें 2 मौजा और 9 कोरी भूमि राजस्व मुक्त थी, लेकिन तप्पे का राजस्व धारक को देना होता था। राजस्व मुक्त भूमि विर्त देने पर उसका भुगतान राजा को स्वयं वहन करना पड़ता था, सरकारी राजस्व की कीमत पर यह विर्त नही दे सकता था, विर्त के रूप में भूमि केवल राजपूत, ब्राह्मण, अथवा कायस्थ जैसी अच्छी जाति जातियों के लोगों को ही दी जाती थी। कुछ परिस्थितियों में उच्च वर्ग के मुसलमानों ने विर्त प्राप्त किये थे। विर्तिया जमीन्दार को सजल (जलकर) सकत (बनकर) शपथ (शहदारी) कर वसूलने का अधिकार था। विर्तिया जमींदार के माध्यम से जमीन्दार अपनी जमीन्दारी पर भी नियंत्रण रखता था, साथ ही कृषि का विकास भी होता था।

आइने अकबरी में प्रदर्ा विवरण के अनुसार गोरखपुर जनपद की समस्त भूमि पर क्षत्रियों का अधिक नियंत्रण था, किन्तु 1844 में इलिएट द्वारा मानचित्र से स्पष्ट हुआ कि ब्राह्मण तथा कायस्थ जाति का प्रभुत्व यहा बढ़ गया। 18वीं शताब्दी में प्राथमिक जमीन्दारों की स्थिति इजारा प्रथा के कारण बड़ी दयनीय थी वे चकलादारो के उत्पीड़न एन दमन के शिकार हुए। पी0डब्लू0 ग्रान्ट की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उन्हे कभी-कभी नानकार मिलता था और उनसे बलपूर्वक अधिक से अधिक राजस्व वसूल किया जाता था। उनके मना करने पर उनकी जमीन्दारिया जब्त कर ली जाती थी तथा किसानों से सीधे राजस्व वसूल किया जाता था। हेनी के शोषण के विरूद्ध प्राथमिक जमीन्दारों ने भी खुलेआम विद्रोह किया था।21

गोरखपुर का ग्रामीण समाज जमीन्दार, विभिन्न श्रेणी के कृषको और श्रमिको में विभक्त था। जमीन्दार वर्ग अनेक अधिकारो के साथ सुखी जीवन व्यतीत करता था। किन्तु अठारहवीं शदी में शक्तिशाली केन्द्रीय सर्ा में ह्रास के कारण किसानों की स्थिति दयनीय हो गयी थी। सरकारी राजस्व एकत्रित करने हेतु इजारा प्रथा प्रचलित हो गयी थी, जिसमंे इजारादार को किसानों से अधिक से अधिक धन ऐठने की खुली छूट प्राप्त हो गयी थी। अवध के नवाबो के प्रशासन में चकलादार या आमिल एक प्रकार से इजारादार बन गया था। वह सरकारी राजस्व के नाम पर अधिक से अधिक भू राजस्व एकत्र करने का प्रयास करता था। इसी प्रकार कर्नल हेनी के समय मंे राजस्व की दर इतनी अधिक थी कि पी0डब्लू0 ग्रान्ट के अनुसार लगभग पचास हजार लोगों को भागकर अन्यंत्र शरण लेनी पड़ी थी।22

निष्कर्ष

गोरखपुर के रईसों में हिन्दू-मुस्लमान दोनों थे। ग्रामीण समाज के अन्तर्गत भूमिहीन कृषकों और ग्रामीण सेवकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी परन्तु इन भूमिहीन कृषकों को भी जमीदारों को अनेकों उपकर देना होता था। नगद मजदूरी बहुत कम थी।23 एक सामान्य मजदूर को तीन पैसा प्रतिदिन और बढई को दो आना प्रतिदिन मिलता था। कुछ बड़े जमीन्दारों को छोड़कर शेष सभी लोगों का जीवन आर्थिक दृष्टि से संतोषजनक नही था। फिर भी आबादी में वृद्धि के साथ-साथ नये-नये मुहल्ले आबद हो रहे थे। परन्तु नगरीकरण की प्रक्रिया बहुत मंद थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *बहार-ए-आजम: नवल किशोर द्वारा सम्पादित पृ0-283*
2. *खुलासत-उस सियक: पृ0-24 वाक्या-ए-अजमेर पृ0-74*
3. *अब्दुल अजीज: द मनसबदारी सिस्टम एण्ड द मुगल आर्मी पृ0-80-81*
4. *मीरात ए अहमदी खण्ड-1 पृ0-291*
5. *मुंशी मुहम्मद लाजिम: आलमगीर नामा खण्ड-1 पृ0-681*
6. *अब्दुल हमीद लाहौरी: बादशाहनामा खण्ड-2 पृ0-360*
7. *नोमान अहमद सिद्दीकी: मुगलकालीन भू राजस्व प्रशासन पृ0-35*
8. *आनन्द राम मुखलिस: मीरात उल इस्तिलाह पन्ना 122*
9. *इरफान हबीब: द एपेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया पृ0-140?*
10. *प्रो0 एस0एन0आर0 रिजवी: 18वी शदी के जमीन्दार पृ0-4*
11. *पूर्वोक्त पृ0-7*
12. *पूर्वोक्त पृ0-9*
13. *मनूची: स्टोरियो डो मोगोट, खण्ड-2 पृ0-431-32*
14. *मुफ्ती गुलाम हजरत: कवायफ-ए-जिला-ए गोरखपुर पृ0-3*

15. *ए0आर0 खान: चीफ टेन्स इन दी मुगल एम्पायर डयूरिग दी रेन आफ अकबर शिमला 1977 पृ0-154*
16. *जहांगीर: तुजुक ए जहागीरी खण-1 पृ0-79 अंग्रेजी अनुवाद*
17. *लाल खण्ड बहादुर मल्ल: वीसेन वशं वाटिका पृ0-70-71*
18. *कमिश्नर्स आफिस गोरखपुर रेवेन्यू रिकार्डस वाल्यूम-1 फाइल-4 सीरियल नं0-16 पृ0-103*
19. *चकलादार एक प्रशासनिक इकाई थी।*
20. *प्रो0 एस0एन0आर0 रिजवी: पूर्वोक्त पृ0-79-80*
21. *ए0के0 सिन्हा: पर्सपेक्टिव इन इण्डियन हिस्ट्री ये प्रो0 एस0एन0 रिजवी का एडमिनिष्ट्रेन इन रीजन: द चकलादार एण्ड आमिल्स आफ गोरखपुर पृ0-186*
22. *अबुल फजल कृत आइन अकबरी और मुफ्ती गुलाम हजरत कृत पूर्वोक्त एवं पी0डब्लू ग्रन्ट की रिपोर्ट के आधार पर*
23. *प्रो0 एस0एन0आर0 रिजवी: पूर्वोक्त पृ0-28*